ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 310-314

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

भक्ति–आन्दोलन के विकास में राजनीतिक शक्तियों का सहयोग

आयुष बघेल

शोध अध्येता– यू0जी0सी0 नेट, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0), भारत

Received-17.03.2023, Revised-24.03.2023, Accepted-29.03.2023 E-mail: baghel.ayush92@gmail.com

सारांशः ***ईसा की पाँचवीं–छठीं शताब्दी पूर्व से लेकर प्राचीन युग के अन्तिम चरण तक, अर्थात् हमारे इस अध्ययन के 'उपनिषद्–युग' से लेकर 'आचार्य–युग' के प्रारम्भ तक की अवधि में भक्ति–आन्दोलन के विकास में राजनीतिक शक्तियों द्वारा क्या योग–दान दिया गया था, यही यहाँ विचारणीय है। दो बातों का प्रारम्भ में ही उल्लेख कर देना आवश्यक है––प्रथम यह कि प्राचीन भारतीय राजाओं के धर्म–प्रश्रय तथा विदेशी राजाओं के धर्म–प्रश्रय में महान अन्तर था। दोनों के सार्वभौमिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण को ही हम इसका मूल कारण मान सकते हैं। भारत में कभी किसी राजा या राज–परिवार द्वारा किसी सम्प्रदाय विशेष या मत विशेष को राज–धर्म (राष्ट्र–धर्म) घोषित करने के बाद भी अन्यान्य धर्मावलम्बियों के प्रति कभी भरी अनुचित व्यवहार नहीं किये गये थे। इसके विपरीत जिस सम्राट में भी धार्मिकता जगी थी वह उदारता तथा सहिष्णुता को लेकर ही। अतः किसी भी राजनीतिक सहयोग का अर्थ एक ऐसे प्रश्रय मात्र से लिया जाना चाहिए जिसमें अभीष्ट मत के प्रचार–प्रसार में केवल नैतिक या आर्थिक सद्भावना–सहायता ही दी गई थी। विरोधी सम्प्रदायों को राजनीतिक स्तर पर कुचल कर राज्याश्रित धर्म की स्थापना या बृद्धि का उदाहरण प्राचीन भारत में कहीं नहीं प्राप्त होता। दक्षिणापथ के कुछ नरेशों को इसके अपवाद स्वरूप लिया जा सकता है, पर इसके लिए भी कोई ठोस प्रमाण नही उपलब्ध है कि यह उनकी धार्मिक नीति का अंग था अथवा सम्प्रदाय विशेष के आचार्य या प्रवर्तक से उसके व्यक्तिगत विरोध का फल था। दूसरी बात यह है कि भारतीय धर्म, विशेषतया ब्राह्मण धर्म, स्वतः इतना लचीला था, अथवा आवश्यकानुसार इस इतना लचीला बना लिया जाता था कि इसमें सब कुछ समा सके।***

कुंजीभूत शब्द– प्राचीन युग, उपनिषद्–युग, आचार्य–युग, भक्ति–आन्दोलन, राजनीतिक शक्तियों, धर्म–प्रश्रय, राज–परिवार।

भक्ति–आन्दोलन तो इस दृष्टि से और भी आगे बढ़ा हुआ था। यह ब्राह्मणों की श्रुति–स्मृतियों को शिरोधार्य करके लोकधर्म या लोक–वेद (बहुमत) की लकुटी हाथ में लिये चल रहा था। वह जानता था कि लोकमत की इसी लकुटी के बल भर वह श्रुति–स्मृतियों का भारी बोझा ढो रहा है और इस प्रकार लोक–चक्षु में वजनदार बना हुआ है। जिस दिन यह लाठी फिसली कि सारी थाती फिसल जायेगी। यह सिद्धान्त भक्ति–आन्दोलन के आदि युग से ही मान्य होकर इसे जन–जन तक पहुँचाने वाले भक्ति कवियों तक में इसी गहराई के साथ उतरा है। ऐसी स्थिति में अन्य धर्म–सम्प्रदायों को सिकी 'अशोक' या धर्माचार्यो को किसी 'हर्ष' की भले ही अपेक्षा रही हो, पर भागवतधर्म के लिए ऐसी किसी राजनीतिक शक्ति के सहारे की आवश्यकता न थी। आध्यात्मिक जगत् में ये भागवत अपने परम आराध्य भगवान विष्णु या उनके अवतारों की शरण चाहते थे और व्यावहारिक जगत–व्यापार में इन्हें जनता–जनार्दन पर भरोसा था। यही कारण है कि केवल राज्याश्रय प्राप्त धर्मो का उत्थान–पतन राजनीति के तराजू पर ऊपर–नीचे झूलता रहा जब कि सात्वतों का धर्म सदा शास्वत बना रहा।

भागवत धर्म के प्रचारक देवकी पुत्र वृष्णिवंशीय कृष्ण का सम्बन्ध सात्वत कुल से था, यह हमें ज्ञात है। इस कुल को महाभारत–युग में राजनीतिक महत्व प्राप्त हो चुका था और शूरसेन प्रदेश में भागवत धर्म के प्रश्रयदाता राजाओं की परम्परा काफी दिनों तक चलती रही। 'महाभारत' में ही चेदि–नरेश वसुउपरिचर का उल्लेख किया गया है जो पांचरात्र या सात्वत धर्म का बहुत बड़ा प्रतिपोषक था।

जैन तथा बौद्ध धर्मो की स्थापना के पश्चात् धर्म को राजनीतिक प्रश्रय का प्रश्न बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। जैन तथा बौद्धधर्म संस्थापकों का सम्बन्ध भी राजघरानों से था और इनके वैवाहिक सम्बनों ने इनके मतों को राज्याश्रय प्रदान कराने में बहुत बड़ा योग दिया था। छठी शताब्दी ई0 पू0 से लेकर चौथी शताब्दी ई0पू0 तक अर्थात् वत्स, अवन्ति, मगध आदि के मौर्य–पूर्व नरेश बहुधा अब्राह्मण धर्मावलम्बी थे और इन्होंने जैन अथवा बौद्ध धर्म के प्रचार में पर्याप्त सहायता की थी। इन राजतंत्रात्मक राज्यों के अतिरिक्त गणतंत्रों ने भी उक्त अब्राह्मण धर्मो के प्रचार में ही योग दिया था। बुद्धकालीन ग्यारह गणराज्यों में से अधिकांश ने तो इन्हीं बौद्ध तथा जैन धर्मो के प्रसार में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। किन्तु तत्कालीन सोलह महाजनपदों में से चेदि तथा शूरसेन तो भागवतों के बहुत बड़े समर्थक और प्रश्रयदाता थे ही, इनके अतिरिक्त मगध के कुछ प्रारम्भिक शासकों ने भी इस धर्म को प्रोत्साहन दिया था। पर छठी शताब्दी ई0 पू0 से लेकर आगामी दो शताब्दियों तक राज्याश्रय की दृष्टि से बौद्ध या जैन धर्म का ही प्राधान्य रहा है। मगध के बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभाव ने तो बौद्धों तथा जैनों को इतना आकर्षित किया था कि वे विम्बिसार, अजातशत्रु आदि को अपने धर्म में घसीटने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। तत्पश्चात् मगध के सिंहासन पर पुराणों के 'शूद्रगर्भोद्भव' महापद्म का आधिपत्य स्थापित होता है और तभी से न केवल भागवत प्रत्युत पूरी ब्राह्मण–व्यवस्था को ठेस पहुँचने लगती है। नन्दों के बाद मौर्यो ने भी भागवत धर्म को कोई प्रश्रय नहीं प्रदान किया

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

था। बौद्ध धर्म–प्रचारक आशोक की धार्मिक नीति तथा बौद्ध अषोक के प्रजाहितकारी कार्यो ने उलटे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाने में बहुत अधिक हाथ बटाया था। पर नन्दों–मौर्यो की राजनीतिक शक्तियों से कहीं अधिक प्रबलतम थी जनशक्ति जिसने भागवत धर्म को आगे बढ़ाने में पांचरात्रिक परम्परा को बनाये रक्खा। हाँ, केवल कुछ समय के लिए इन विरोधी राजनीतिक शक्तियों ने कहीं–कहीं आन्दोलन की प्रगति में शिथिलता अवष्य ला दी थी। मेगस्थनीज के कथनानुसार भी चौथी शती ई0 पू0 में शूरसेन प्रदेश (मथुरा) में वासुदेवोपासकों का प्राघान्य था। कर्टियस ने भी लिखा है कि जब पोरस ने सिकन्दर के विरूद्ध आक्रमण करने के लिए अपनी सेना बढ़ाई तो सेना के आगे–आगे हेराक्लीज (कृष्ण) की मूर्ति लाई गई थी। किन्तु तीसरी शती ई0 पू0 में हमें यहाँ इस मत का प्रभाव घटता हुआ दिखाई देता है। इस युग के बौद्ध साहित्य अथवा आभिलेखिक साक्ष्यों में हमें भागवतों का कोई उल्लेख तक नहीं मिलता है। अशोक अपने सातवें शिलालेख में ब्राह्मण, आजीवक आदि का उल्लेख करते हुए भी भागवतों को छोड़ देता है। साहित्यिक साक्ष्यों में केवल 'निद्देस' में ही वासुदेव और बलदेव के नाम आते हैं और उन्हें भी पशु–पक्षी के पूजकों के साथ गिना गया है। इसी प्रकार 'अंगुत्तरनिकाय' आजीवक, निगन्थ, मुण्डसावक, जटिलक, परिव्राजक मागंधिक, तेदान्तिक, अविरूद्धक, गौतमक तथा देवधम्मिक आदि इस सम्प्रदायों का उल्लेख करता है पर वासुदेवक, भागवत या अर्जुन का नाम नहीं गिनाता हैं। इतिहासकारों ने इसका कारण यह बताया है कि उस समय तक भागवत धर्म केवल दोआब तक ही सीमित था। किन्तु बौद्धों तथा जैनियों का यह व्यापकत्व अधिक दिनों तक राज्याश्रय द्वारा पल्लवित न हो सका और अन्तिम मौर्य सम्राट वृहदथ का बध करके ब्राह्मण पुष्यमित्र (187–151 ई0 पू0) ने मौर्य साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार ब्राह्मण द्वारा दिलाया गया राज्य फिर एक ब्राह्मण द्वारा ही छीन लिया गया। पुष्यमित्र वह प्रथम सम्राट् है जिसने ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान में सक्रिय सहयोग दिया और चिरकाल से लुप्त अश्वमेघ यज्ञ का पुनरुद्धार किया। वह तथा उसके वंषजों ने भागवत धर्म के प्रसार में क्या योग दिया था इसका विस्तृत विवरण तो नही प्राप्य है पर परवर्ती शुंगों ने निश्चय ही भागवत धर्म को बढ़ावा दिया था। शुंग वंश के नवें राजा भागभद्र का नाम ही भागवत था। उसके शासन–काल में तक्षशिला के यवन शासक अन्तलिकितस ने उसकी राजसभा में दिये के पुत्र हेलिओदोर को अपना राजदूत बनाकर भेजा था। सम्भावना है कि यवन–नरेश इस शुंग–शासक से मैत्री–सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था और इसीलिए दूत ने स्वयं को भागवत–धर्मावलम्बी बताया था। अतः षुंगों द्वारा भागवतधर्म को प्रश्रय देना प्रमाणित हो जाता है। यदि भारतीय इतिहास के रंगमंच पर शुंगों का पदार्पण नहीं हुआ होता तो पश्चिमोत्तर के यवनों ने अषोक की धार्मिकता से उत्पन्न दुर्बल राजनीतिक षक्ति को पददलित करके भारत पर अपना अधिकार लिया होता। शुंगों के इसी महत्व को प्रदर्शित करते हुए श्री के0 एम0 मुंशी ने लिखा है–

'पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों ने अशोक के पूर्ववर्ती मगध की परम्परा को बढ़ाया। धर्म–विजय की अभिप्राप्ति का साधन युद्ध से घृणा नहीं अपितु सैन्य संगठन का निर्माण समझाया गया। मध्यदेष के बुद्धिमानों एवं विद्वानों में सन्यास का मोह समाप्त हो गया। धर्म की सुदृढ़ स्थापना की गई तथा स्मृतियों के नियमों की पूर्ण सत्ता स्थापित की गई। सामूहिक उत्साह की नई लहर ने बौद्ध धर्म के विरूद्ध संघर्श के रूप में एक अधिक समृद्ध एवं पूर्णतर जीवन के सन्धान के रूप में युद्ध–देवता कार्तिकेय के सम्प्रदाय के रूप में, भागवत सम्प्रदाय के पुनरुत्थान तथा हिन्दु देव–मण्डल में वासुदेव–कृश्ण की प्रधानता के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त की।

अभिलेखों से भी हमें यह सोचने का अवसर प्राप्त होता है कि षुंगो के युग में भागवतधर्म को प्रश्रय प्राप्त हुआ थाय कारण यह है कि बहुधा विदेषियों द्वारा राजधर्म ही स्वीकार करने की सम्भावना रहती है। वेसनगर अभिलेख (200 ई0 पू0) में भागवत हेलिओडोर द्वारा देवाधिदेव वासुदेव का गरुड़ध्वज बनवाने का उल्लेख है।

शुंगों के पश्चात ब्राह्मण कण्वों का शासन–काल (75 ई0 पू0 से 30 ई0 पू0) भी ब्राह्मण–पुररुत्थान का युग कहा जा सकता है। पुराणों में इनके विषय में जो यह कहा गया है कि ये धर्मानुसार राज्य करेंगे, इसका स्पष्ट आशय ब्राह्मण–पद्धति से है। इस वंष के चार नरेशों में से प्रथम का नाम वासुदेव तथा तृतीय का नारायण हमें यह सुझाता है कि इन काण्व गोत्रीय नरेषों में भागवत धर्म के प्रति निष्ठा थी।

उत्तरापथ की भाँति दक्षिणापथ में भी, जहाँ चौथी शताब्दी ई0 पू0 से ही भागवत धर्म का प्रचार होना आरम्भ हो चुका था, कुछ शासकों का इसे राज्याश्रय प्रदान होने लगा था। सातवाहन नरेशों में से कुछ ने इसे प्रश्रय प्रदान किया था। पुराणकारों की वर्णाश्रम धर्म–स्थापन की जिन समस्याओं का अध्ययन हमने किया था उन समस्याओं को राजनीतिक स्तर पर सुलझाने का सर्व प्रथम उल्लेखनीय प्रयत्न नासिक गुहालेख के बहु प्रशंसित सम्राट, जिसके 'वाहनों ने तीन समुद्रों का जल पिया था, गौतमीपुत्र शातकर्णि (106 ई0 से 130 ई0) ने किया था। उक्त अभिलेख यह सूचित करता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि ने ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान किया और विरोधी तत्वों का उन्मूलन कर दिया। बौद्ध धर्म के प्रभाव तथा विदेशियों के भागवत धर्म में सम्मिलित हो जाने के फलस्वरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णो में वर्णसंकरता आ गई थी। इस सुप्रसिद्ध नरेश ने इसे दूर करके वैष्णव पुराणकारों के कार्यो में हाथ बटाया था। अपने विस्तृत साम्राज्य (गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा, बरार, उत्तरी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

कोंकण, पूना तथा नासिक के निकटवर्ती भूभाग) में शातकर्णि ने वर्णाश्रम धर्म की पुनः स्थापना करके भागवत धर्म की अवैदिक तत्वों से जो रक्षा की थी वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। गौतमीपुत्र शातकर्णि के अतिरिक्त अन्य शातवाहन नरेशों ने भी वैष्णव धर्म के प्रचार में योग दिया था। इस युग के अभिलेखों पर उत्कीर्ण 'गोपाल', 'विष्णुदत्त', 'विष्णुपालित', 'कृष्ण' आदि संज्ञायें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

प्रथम शती ई0 में पश्चिमोत्तर भारत में एक ऐसे विशाल साम्राज्य का निर्माण कुषाणों द्वारा होता है जिससे बौद्धों के लुप्तप्राय राज्याश्रय का पुनरुद्धार हुआ। यद्यपि इस वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक कनिष्क चतुर्थ बौद्ध संगीति से ही महायान बौद्ध शाखा का संरक्षक हो चुका था और उसे राजधर्म का रूप दे चुका था तथापि उसने कहीं भी धार्मिक असहिष्णुता नहीं दिखाई। वास्तव में भागवतों के आदि स्थान पर राज्य करने वाला कोई भी न्यायी शासक जनरुचि का पूर्ण विरोध किसी प्रकार भी नहीं कर सकता था और कनिष्क में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव न था। इतना ही नहीं, इसी वंश के एक परवर्ती शासक हुविष्क की मुद्राओं पर विभिन्न देवी–देवताओं में विष्णु की भी मूर्ति उत्कीर्ण है। एक सील से, जो हुविष्क की बताई जाती है, यह पता चलता है कि वह विष्णु का भक्त था। हुविष्क के पश्चात् कुषाण–नरेश वासुदेव (145–176 ई0) सिंहासनासीन हुआ जिसका नाम हमें कम से कम इतना तो सूचित करता है कि अब तक इन विदेशी कुषाणों का भारतीयकरण हो चुका था। यद्यपि वासुदेव का नामकरण भागवत धर्म से सम्बन्धित है पर इतिहासकारों ने उसे शैव माना है। जो भी हो, कुषाणों के अन्तिम दो शासकों के ब्राह्मण धर्मावलम्बी होने का प्रमाण मिलता है और इसे हम उन पर पड़ने वाला स्थानीय प्रभाव ही कह सकते हैं। डा0 रायचौधरी ने कुषाणयुगीन सभ्यता का महत्व बताते हुए लिखा है कि "यह धार्मिक नवचेतना तथा धर्म–प्रचार–सम्बन्धी कार्यो का युग था। इसी युग में....महायान बौद्ध धर्म और मिहिर तथा वासुदेव कृष्ण के सम्प्रदायों का विकास हुआ। भागवतों के आदि स्थान मथुरा में कुषाण–युग में जिस कला का विकास हुआ था उसने उपासकों को अवतारों की मूर्तियाँ प्रदान करके सगुणोपासना का पथ और अधिक प्रकाशमान कर दिया था। कुषाण–नरेशों ने इस कला को जो प्रोत्साहन दिया था वह भी प्रशंसनीय है।

कुषाणों के बाद उत्तरी भारत में यौधेयों का आधिपत्य स्थापित हुआ। कुणिन्द राज्य से इनका गहरा सम्बन्ध था। इन दोनों राज्यों में भागवत धर्म को प्रश्रय देने के मुद्रा–सम्बन्धी प्रमाण मिलते हैं। छत्रेश्वर नामक एक कुणिन्द–शासक की एक मुद्रा 200ई0 की प्राप्त हुई है जिस पर 'महात्मन' तथा 'भागवत' की उपाधि उत्कीर्ण है। किन्तु आगे चलकर कुणिन्दों ने शैवधर्म स्वीकार कर लिया था। पर युधिष्ठिर के वंषज यौधेय तथा अर्जुन के वंशज आर्जुनायन गणराज्यों ने अपने पूर्वजनों के धर्म के प्रसार में सराहनीय योग दिया था। इन्हीं गणराज्यों ने कुणाणों की सत्ता का उन्मूलन किया था। इनमें से कुछ शैव मतावलम्बी भी थे किन्तु अधिकांश ने भागवत धर्म को प्रश्रय प्रदान करके भक्ति–आन्दोलन को आगे बढ़ाने में योग दिया था।

जिन राज्याश्रयों का अब तक उल्लेख किया जा रहा था उन सब को बहुत पीछे छोड़ जाने वाला तथा पूरे भक्ति–आन्दोलन के इतिहास में, राजनीतिक सहयोग की दृष्टि से, एक नया परिच्छेद जोड़ने वाला युग गुप्तों के उदय से आरम्भ होता है। चौथी शताब्दी ई0 के प्रथम चरण से आरम्भ होने वाली यह षक्ति आगामी दो शताब्दियों तक भारत की सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक शक्ति बनी रही। इन्हीं 'परम भागवतों' के राज्याश्रय ने भागवत–धर्म की प्रगति में एक नई लहर ला दी थी। उदयगिरि में एक अभिलेख चौथी शताब्दी का मिला है जिसमें चतुर्भुज देवता का चिन्ह है जो सम्भवतः विष्णु है। भीतरी (गाजीपुर) के एक स्तम्भ पर 454 से 464 ई0 के बीच का अभिलेख प्राप्त है जिसे डा0 भण्डारकर ने वासुदेव–कृष्ण–सम्बन्धी अभिलेख स्वीकार किया है। डा0 भण्डारकर ने चक्रपालित द्वारा एक विष्णु–मन्दिर बनवाने का उल्लेख किया है। सुराष्ट्र में स्कन्दगुप्त का राज–प्रतिनिधि पर्णदत्त था। यह चक्रपालित उसी पर्णदत्त का पुत्र था जिसने स्कन्दगुप्त के आदेश से सुप्रसिद्ध सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार करवाया था और जब झील के पुनर्निर्माण का कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया तो चक्रपालित ने चक्रभूत अर्थात् विष्णु का मन्दिर बनवाया था, पर दुर्भाग्यवश सुदर्शन झील अथवा उक्त विष्णु–मन्दिर का कोई चिन्ह आज अवशिष्ट नहीं है। गुप्त–नरेश बुद्धगुप्त के एरण के सामन्त मातृविष्णु ने तथा उसके अनुज धन्यविष्णु ने अनार्दन के सम्मानार्थ जिस ध्वज –स्तम्भ का निर्माण करवाया था उसका बोध हमें बुद्धगुप्त के एरण–अभिलेख से होता है। इनके नाम से तो हमें दोनों का वैष्णव–मतावलम्बी होना परिलक्षित होता ही है, साथ ही मातृविष्णु को यहाँ अत्यन्त भगवद् भक्त भी कहा गया है। इसी 'भगवद् भक्त' के आधार पर डा0 भण्डारकर ने उक्त जनार्दन को वासुदेव–कृष्ण स्वीकार किया है जो तर्कसम्मत है। डा0 भण्डारकर ने इसकी तिथि 483 ई0 स्वीकार की है। इसी अभिलेख में भगवान विष्णु के अवतारों की, जैसे वाराहा–वतार की, स्तुति पूर्णतया पौराणिक ढंग से की गई है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का मिहरौली लौह–स्तम्भ भी विष्णु–ध्वज कहा गया है। डा0 भण्डारकर ने कोह (बघेल खण्ड) के एक ताम्रपत्र का भी उल्लेख किया है जिसकी तिथि 495 ई0 है और जिसमें जयनाथ द्वारा भागवतों को उसी देवता के मन्दिर के जीणोद्धार के लिए एक ग्रामदान का उल्लेख है। राजपूताना के गणराज्यों ने भी भागवतधर्म को प्रश्रय प्रदान किया था। इसका उल्लेख हम प्रारम्भ में ही कर चुके हैं। जोधपुर के मंदोर नामक स्थान से प्राप्त स्तम्भ के चित्रों में बालकृष्ण सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। डा0 भण्डारकर ने इसकी तिथि पाँचवीं शती स्वीकार की है। इन विवरणों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुप्तों तथा उनके सामन्तों एवं अधीनस्थ राज्यों में से अनेक ने भागवत धर्म को प्रश्रय प्रदान किया

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

था। यद्यपि उनमें से किसी नरेश ने भागवत धर्म के प्रचारार्थ बौद्ध अशोक जैसा सुनियोजित प्रचार–कार्य नहीं किया था तथापि प्रजाहितकारी कार्यो के लिए प्रसिद्ध तथा अपनी युद्ध एवं दान–वीरता के लिए विख्यात गुप्तों का परम भागवत होना ही पर्याप्त था और उनका अप्रत्यक्ष सहयोग भी भारत के एक विस्तृत भूभाग पर वैष्णव धर्म के प्रचार में बहुत अधिक समर्थ था। यही वह युग है जब पुराणकारों को भागवत धर्म–सम्बन्धी साहित्य के सृजन एवं अभिवर्द्धन का स्वर्णिम अवसर प्रदान हुआ था। यह गुप्तों के साहित्यानुराग का ही प्रतिफल रहा कि अनेक दार्शनिक एवं पौराणिक ग्रन्थों की रचना हुई जिससे भागवत धर्म गतिशील और 'शास्त्रानुमोदित' हुआ। इसी युग में मनुस्मृति के आधार पर याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन, वृहस्पति आदि ने अपने स्मृति–ग्रन्थ लिखे थे। 'सांख्यकारिका, मीमांस सूत्र, 'सबर भाश्य, 'पदार्थ धर्म संग्रह, 'दशपदार्थ शास्त्र आदि दार्षनिक ग्रन्थों का प्रणयन गुप्तयुगीन धार्मिक जागरूकता का एक सबल प्रमाण है। बौद्धों, जैनियों तथा विभिन्न ब्राह्मण–मतों के बीच भागवत धर्म जिस प्रकार तीव्र गति से बढ़ रहा था वह भक्ति–आन्दोलन के इतिहास में सचमुच एक गौरवपूर्ण सोपान है। गुप्तों की इसी विष्णु–परायणता का फल था कि भारत के अधिकांश भूभाग पर भागवत धर्म का प्राधान्य स्थापित हो गया। गुप्तों के अधिकांश अभिलेखों के वैष्णवात्मक तत्वों को देखते हुए डा0 भण्डारकर ने कहा है कि वैष्णव धर्म ही वह बहु प्रचलित धर्म था जिसे गुप्तों का राज्याश्रय प्राप्त हुआ था।

जब आश्वघोष जैसा मेधावी ब्राह्मण, जो भक्ति एवं उसके सार्वजनिक प्रभावों को भली–भाँति जान चुका था, और यह अनुभव कर चुका था कि गौतम की शिक्षाओं में कृष्ण की पराभक्ति के प्रच्छन्न प्रवेश द्वारा ही बढ़ते हुए भागवमतों के सामूहिक आकर्षणों को क्षीण बनाया जा सकता है, धर्म–प्रवर्तन करके बौद्ध हो गया और उसने महायान का नेतृत्व अपने में ले लिया तथा साथ ही उसे कुषाणों का राज्याश्रय प्राप्त हो गया तब तो स्थिति इतनी संकटापत्र हो उठी थी कि गुप्तों के राज्याश्रय के अभाव में भागवतों का जन–आन्दोलन ठीक पूर्ववत् ही गतिशील रह पाता या नहीं इसमें भी सन्देह होने लगा था। पुराणों तथा पांचरात्र आगमों का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि किस प्रकार बौद्धों की महायान शाखा का प्रभाव स्वयं भागवत ग्रन्थों एवं भागवत सम्पदाय वालों पर पड़ने लगा था। किन्तु कुषाणों के पतन के पश्चात् से लेकर वर्द्धन राजवंश के उदय तक की अवधि में एक ओर तो वैष्णव आचार्यो एवं पण्डितों ने साहित्य द्वारा भागवत धर्म में उत्पन्न क्षणों को नश्तर लगाकर आरोग्य करना आरम्भ किया और दूसरी ओर गुप्त नरेशों ने दुर्बल पड़ते भागवत धर्म को शक्तिमय बनाने के लिए राज्याश्रय प्रदान किया। इसी राज्याश्रय के परिणामस्वरूप बौद्धधर्म को प्रोत्साहित करने वाली कुषाण–कालीन मथुरा तथा गान्धार कलाओं को चुनौती देने वाली गुप्तकालीन कला षैली का विकास हुआ और मूर्तिकारों एवं वातु–शिल्पियों की देन से विष्णु के अनेकानेक अवतारों की कथाएँ प्रस्तर–खण्डों पर मुखरित होने लगी।

भीतरी स्तम्भ–लेख में 'हतिरिपुरिव कृष्णों देवकीमभ्युपेतः' से कृष्ण के जीवन की तथा इसी प्रकार के अन्यान्य अभिलेखों से अनेक अवतारों की कथाएँ वर्णित हैं। विशेषता यह है कि जहाँ मथुरा–शैली की कला बौद्ध के जन्म, सम्बोधि, ध र्म–चक्रप्रवर्तन तथा महापरिनिर्वाण–सम्बन्धी केवल थोथे एवं अनाकर्षक मूर्ति प्रस्तुत करती रही वहाँ गुप्तकालीन कला वैयणव तथा शैव–तत्व–प्रतिपादक आध्यकत्मक अभिव्यंजनायुक्त तथा कलागत सौन्दर्यो से परिपूर्ण मूर्तियों द्वारा उक्त सम्प्रदायों को प्रेरणा देने लगी। असंख्य मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण ने सगुणोपासना के प्रचारक धर्माचरयों को उनके कार्यो में सहयोग दिया।यह सब गुप्त–नरेषों के प्रश्रय का ही परिणाम था। किन्तु इसका यह कदापि अर्थ नहीं लिया जा सकता कि भगवान बुद्ध–सम्बन्धी कला को गुप्तों ने प्रोत्साहन नहीं दिया, हाँ वैष्णव वित्रकारों एवं शिल्पकारों ने उन्हें प्रभावित अवश्य किया और अब उनके भित्त–चित्रों की आकृति तथा भावभंगिमा भी वैष्णवात्मक होने लगी। इस प्रकार विचाराधीन युग में धार्मिक एवं राजनीतिक स्तरों पर भागवत धर्म को जो बढ़ावा दिया गया उससे आन्दोलन में एक आश्चर्यजनक प्रगति आ गई। इस प्रगति ने न केवल बौद्ध धर्म को पीछे धकेल दिया था प्रत्युत पहली से चौथी शताब्दी ई0 के प्रथम चरण तक वृद्धि पाते हुए कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक धर्म को भी भागवत धर्म ने अपने विकास के लिए मार्ग देने को बाध्य किया। ईसा की प्रथम चार शताब्दियों में हमें वैदिक यज्ञों के चिन्ह पाषाणयूप–बहुत अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं और इस अवधि के नरेशों के अगणित अश्वमेघ यज्ञों के अनुष्ठान के भी विवरण प्राप्त होते हैं। किन्तु आगे की शताब्दियों में अग्नि, वेदी या यूप के स्थान पर भीटा, नालन्दा, वैषाली आदि से प्राप्त मुहरों पर शंख, चक्र त्रिशूल तथा नन्दी आदि के चिन्ह अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं।

उत्तर भारत ही नहीं दक्षिण भारत में भी भागवत धर्म के प्रचार के प्रमाण उपलब्ध है। सुप्रसिद्ध आलवारों के रसमय मधुर गीतों से इसी युग में अधिकांश दक्षिणी भारत गूँज रहा था। जहाँ तक राज्याश्रय का सम्बन्ध है, दक्षिणी भारत के सुप्रसिद्ध गुप्त–कालीन वाकाटक वंश के प्रथम चार प्रसिद्ध नरेश तो शैव मतावलम्बी थे और उन्होंने इस सम्प्रदाय के विकास में कुछ योग दिया था किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय का दामाद वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय अपने श्वसुर से इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि इसने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। दुर्भाग्यवश इस वैष्णव शासक की मृत्यु पाँच वर्षो के अल्पकालीन शासन के पश्चात् ही 390 ई0 में (30 वर्ष की अवस्था में) हो गई जिससे यह वैष्णव धर्म के प्रचार में कोई विशेष सहयोग न दे सका। किन्तु अनवरत 20 वर्षो तक उसकी पत्नी प्रभावती गुप्ता (चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री) संरक्षिका के रूप में शासन करती रही और

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

भागवत–कुल की इस राजकुमारी ने भागवत धर्म के प्रचार में योग दिया होगा, ऐसा अनुमान सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

गुप्तों के समकालीन वाकाटकों के सम्बन्ध में उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् हम पुनः उत्तर भारत के राजवंशों की ओर दृष्टिपात करेंगे और देखेंगे कि उन्होंने वैष्णव धर्म को कितना प्रश्रय दिया था।

यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि पाँचवी शताब्दी के अन्तिम चरण में तोर–माण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल के बर्बर आक्रमणों ने उत्तरी भारत में जो राजनीतिक अशान्ति उत्पन्न कर दी थी उससे सारा उत्तरी भारत राजनीतिक दृष्टि से छिन्न–भिन्न हो गया था और यदि ह्वेनसांग के कथन पर विश्वास किया जाय तो इन हूणों ने बौद्ध विहार को लुटवाकर उनमें आग लगवा दी थी। ब्राह्मण धर्म के विरोध में इन्होंने क्या किया था, इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं प्राप्त है, पर गुप्तों के विनाश का एक कारण बनने वाले हूणों ने अप्रत्यक्ष रूप से तो वैश्णव धर्म को, उसके महान आश्रयदाताओं को श्रीहीन करके क्षतिग्रस्त किया ही था। यह भी सत्य है कि भारतीय समाज में एक बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित हो जाने के पश्चात् हूणों ने पुराणकारों के समक्ष वर्णाश्रम–धर्म की स्थापना के प्रयत्नों में कुछ जटिलता ला दी थी। पुराणों में जो वर्ण–सम्बन्धी कठोरताओं का समावेश किया गया है उसके मूल में अन्यान्य कारणों के साथ विदेशी जातियों का सम्मिश्रण भी है।

ऊपर जिस राजनीतिक विश्रृंखलता की बात की गई है उसने न केवल राजनीतिक स्तर पर छोटे–छोटे राजनीतिक गुटों का समय–समय पर निर्माण किया था प्रत्युत हम कभी–कभी धार्मिक आधार पर भी दो राज्यों की मित्रता या शत्रुता को बनते–बिगड़ते देखते हैं। जैसे परवर्ती गुप्तों तथा गौड़ों के गुट का संगठन इसलिए और भी सुदृढ़ रूप से संगठित हो पाया था कि वे दोनों ब्राह्मण तथा विशेषतया भागवत धर्मानुयायी थे जब कि उनका शत्रु–गुट पुष्णभूति तथा मौखरी वंश बौद्ध धर्म का संरक्षक था। परवर्ती गुप्तों में आदित्य सेन, विश्णुगुप्त आदि ने वैष्णव धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया था पर उनका वह पूर्व गौरव खो चुका था। अतः उनका प्रश्रय भी बहुत अधिक फलयायक नहीं रहाय किन्तु अब तक भक्ति–आन्दोलन जनता की वस्तु बन चुका था और किसी भी राज्याश्रय की इसे कोई विषेश आवष्यकता नहीं रह गई थी। वराहमिहिर तथा अमरसिंह जैसे सुप्रसिद्ध लेखकों के साक्ष्यों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पाँचवीं–छठीं शताब्दी तक भागवत धर्म बहुत अधिक विस्तार प्राप्त कर चुका था। वाण के 'हर्शचरित' तथा 'जीवन–वृतान्त में भी केष लुम्बक, पाशुपति आदि के साथ–साथ पांचरात्रिक व भागवतों का उल्लेख किया गया है। भागवतों का प्राघान्य हिन्दू समाज पर इतना सुदृढ़रूप से स्थापित हो चुका था कि अपने 41 वर्षो के शासन–काल (606–647 इ0) तक एकनिष्ठ होकर बौद्धों को प्रश्रय पद्रान करने वाला तथा हर प्रकार से उन्हें धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से ऊँचा उठाने वाला हर्ष भी, जो अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी यह कामना करता रहा कि 'ईश्वर करे कि मैं आगामी जन्म–जन्मान्तरों में सदा इसी प्रकार अपने धन–भण्डार को मानव–जाति को धार्मिक रीति से दान करता रहूँ और इस प्रकार अपने को बुद्ध के दसबलों से सम्पन्न कर लूं' इस प्रगति में कोई रूकावट नहीं उपस्थित कर सका। हर्ष ने कन्नौज की परिषद में एक विदेशी यात्री (चीनी यात्री) ह्वेनसांग को तथाकथित सार्वजनकि धार्मिक सम्मेलन में अपने राजत्व का दुरुपयोग करके जिस प्रकार ऊँचा उठाया था और अपने इस धार्मिक पक्षपात के विरूद्ध उठी आवाज को उसने मुख्य ब्राह्मण नेताओं को प्राणदण्ड देकर तथा 500 ब्राह्मणों को निष्कासित करके जिस प्रकार उन्हें दबाया था, उससे कम से कम वर्द्धन–राज्य–सीमा से तो ब्राह्मण धर्म का लोप ही हो जाना चाहिए था, किन्तु जनता की नस–नस तक पहुँचा हुआ यह ब्राह्मण धर्म (वैष्णव तथा शैव धर्म) इन समस्त विरोधी परिस्थितियों से लोहा लेता रहा और इस विरोध का कोई भी स्थायी प्रभाव उस पर अन्त तक न पड़ सका।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भक्ति आन्दोलन का अध्ययन डा0 रतिभान सिंह नाहर, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद।
2. प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, डा0 रतिभान सिंह नाहर किताब महल इलाहाबाद।
3. भक्ति साहित्य की मदरोपासना, परशुराम चतुर्वेदी–भारतीय भण्डार, प्रयाग।
4. भारत में मुस्लिम षासन का इतिहास–एस0आर0 शर्मा, लक्ष्मी नारायण आगरा।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

*****